टिप्पणियाँ

18

पुरुषसूक्त

वेद ज्ञानराशि और शब्दराशि है। वेद अपौरुषेय है। प्राणिमात्र के इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार के लिए अलौकिक उपाय बताने वाला वेद है। वेद द्वारा बताये गये उपाय प्रत्यक्ष और अनुमानप्रमाण से अगम्य है। वे उपाय केवल वेद शब्द से ही जाने जा सकते है। ईश्वर भी सृष्टिकरण में वेद ज्ञान को आश्रित करके जगत् की सृजना करता है। इसीलिए वैदिक ज्ञान निर्भ्रान्त और प्रमाद रहित कहा जाता है। वे वेद प्रयोग भेद से यज्ञ निर्वाहक होने से ऋक् यजु और साम तीनों भिन्न है। उसे ही वेदत्रयी कहा जाता है। वेद्वेत्ताओं ने प्रतिवेद को पुनः मन्त्र और ब्राह्मण दो प्रकार के विभाग किये है। मन्त्र को ही संहिता कहते है। इसलिए मन्त्र यज्ञादि अनुष्ठान कारणभूद द्रव्य देवतादि के प्रकाशक है। ब्राह्मण विधि, अर्थवाद आदि के प्रतिपादक होने से अनेकविध है। स्तुत्यात्मक ऋग्वेद है। ऋग्वेद का मण्डलरूप और अष्टकरूप से दो प्रकार विभाजन होता है। मण्डलरूप विभाग होने पर यह सूक्त दशम मण्डल के नवतितम (९०वां)(ऋ.वे. म-१०.९०)। मन्त्रात्मक ऋग्वेद का अंश है।

पुरुषसूक्त अतीव महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद संहिता में दशम मण्डल में कुछ सूक्तों में देवों की स्तुति नहीं है। और किन्हीं में स्तुति भिन्न भी है। पुरुषसूक्त भी ऐसा ही सूक्त है। इस सूक्त में सृष्टि विषयक वर्णन है। इस सूक्त में आदिपुरुष के शरीर के माध्यम से देवताओं द्वारा जो सृष्टि की गई है वो वर्णित है। यहाँ पुरुष की आध्यात्मिक कल्पना का एक भव्य निदर्शन है। पुरुष ही समग्र विश्व में व्याप्त है। जो तीनों, प्राचीनकाल में, वर्तमानकाल में तथा भविष्यत्काल में विद्यमान है। यजुर्वेद के एकत्रिंश (३१वें) अध्याय में पुरुष स्वरूप वर्णित है। जहां ऋग्वेद के अपेक्षा षट् मन्त्र अधिक है। इस ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त में सृष्टि प्रक्रिया यज्ञरूप में कल्पित है।यह सूक्त किञ्चित् परिवर्तन के साथ सामवेद, शुक्लयजुर्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होता है। सृष्टी के लिए देवताओ और ऋषियों द्वारा जो यज्ञ किया गया उस यज्ञ में पुरुष हविरूप में परिकल्पित है। उसी यज्ञ में वसन्तर्तुः घृत, ग्रीष्मर्तु इन्धन और शरदृतु हवि थे। इसी पुरुष से पशु-पक्षि, ऋगादि वेद, सूर्य, चन्द्र, इत्यादि उत्पन्न हुए। इस प्रकार सृष्टि वर्णन किया गया। इस पुरुषसूक्त का नारायण ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, षोडशमन्त्र में विराट् त्रिष्टुप्, और विराट् पुरुष देवता है। इस सूक्त में १६ मन्त्र है। उन मन्त्रों

टिप्पणियाँ

द्वारा पुरुषस्वरूप और सृष्टि विवरण वर्णित है। शुक्लयजुर्वेद में जो मन्त्र है उनकी भी इसी तरह व्याख्या है। उत्तरभाग उत्तरनारायण कहलाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- इस सूक्त का संहितापाठ करने में;
- इस सूक्त का पदपाठ करने में;
- इस सूक्त के मन्त्रों का अन्वय जान पाने में;
- इस सूक्त के मन्त्रों का सान्वय प्रत्येक पदार्थ को जान पाने में;
- इस सूक्त की व्याख्या और सरलार्थ समझ पाने में;
- इस सूक्त में स्थित कुछ शब्दों का व्याकरण जान पाने में;
- लौकिक और वैदिक शब्दों में भेद कर पाने में;
- पुरुष का स्वरूप जान पाने में;
- सृष्टि विवरण जान पाने में।

18.1 अब मूलपाठ पढ़ते है (पुरुषसूक्तम्)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥४॥

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥५॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥६॥

टिप्पणियाँ

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥७॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये॥८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥९॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥१०॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥१४॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥१५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥१६॥

इसके बाद का विद्यमान भाग शुक्ल यजुर्वेदीय है। वहाँ पर यह भाग पुरुषसुक्त का ही भाग माना गया है। उत्तरनारायणी सूक्त। शुक्ल यजुर्वेद।३१ अध्याय।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥१७॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥१८॥

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥१९॥

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥२०॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे॥२१॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण॥२२॥

18.2 अब मूलपाठ समझते है

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१॥

पदपाठः – सहस्रशीर्षा। पुरुषः। सहस्रऽअक्षः। सहस्रऽपात्॥ सः। भूमिम्। विश्वतः। वृत्वा। अति। अतिष्ठत्। दशऽअङ्गुलम्॥१॥

अन्वय – पुरुषः सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्, सः भूमिं विश्वतः वृत्वा दशाङ्गुलम् अतिष्ठत्।

व्याख्या – सभी प्राणि समष्टि रूप से ब्रह्माण्ड देह रूप विराडाख्य जो पुरुष है वो यह सहस्रशीर्षा है। सहस्रशब्द का उपलक्षण अनन्त शिरों से युक्त है। जितने सभी प्राणियों के शिर है वे सभी उसकी देह में विद्यमान होने से उसका भी सहस्र शीर्षत्व है। इसी प्रकार सहस्राक्षित्व और सहस्रपादत्व है। वो पुरुष भूमि अर्थात ब्रह्माण्डगोलक रूप को विश्वत अर्थात सभी और से वृत्वा–व्याप्त होकर दशाङ्गुल अर्थात् दशाङ्गुल के परिमाण देश के बाहर भी बैठा है या अवस्थित है। दशाङ्गुल यह उपलक्षण है। ब्रह्माण्ड से बाहर भी सब जगह व्याप्य होकर अवस्थित है।

अन्वय सहित प्रतिपदार्थ – पुरुषः = परमेश्वर या ब्रह्म, सहस्रशीर्षा = अनन्तमस्तकयुक्त, सहस्रशब्द बहुत्ववाची है। शिर के ग्रहण से सभी अवयवों का ग्रहण है। सहस्राक्षः = अनंत लोचनसमन्वित, अक्षिग्रहण से यहां सभी ज्ञानेन्दियों का उपलक्षक है। सहस्रपात् = असंख्य चरणयुक्त,। पादग्रहण यहां कर्मेन्द्रियों का उपलक्षक है। स = अन्तर्यामी, भूमिं = ब्रह्माण्डगोलकरूप धरित्री, अथवा पञ्चभूत में व्याप्त, भूमिशब्द यहां पञ्चभूत उपलक्षक है। सर्वतः = सम्पूर्ण विश्व में, ऊर्ध्वम् अधः अग्रादितः अन्तर्बहिश्च। स्पृत्वा = व्याप्य, परिव्याप्त इत्याशय। दशाङ्गुलम् = दशाङ्गुल परिमाण देश। दशाङ्गुल यह उपलक्षण है। ब्रह्माण्ड से बाहर भी सब जगह व्याप्य या अवस्थित इत्याशय। यद्वाख्न नाभी के समीप से दशाङ्गुल दूर हृदय में संस्थित। दशाङ्गुलशब्द अल्प का द्योतक भी है। अति = पार करके, अधिकं वा, अतिष्ठत् = अवस्थित है। यहां अनुष्टुप छन्द है॥१॥

सरलार्थ – विराडाख्य पुरुष अनन्त शिरों से युक्त अनन्त आखों से युक्त अनन्त पादों से युक्त है। वो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर भी दशाङ्गुल परिमित स्थान में भी विद्यमान है। अर्थात् वह ब्रह्माण्ड से बाहर भी बैठा है।

व्याकरण

- सहस्रशीर्षा-सहस्रं शीर्षाणि यस्य सः (बहुव्रीहिसमास)।
- सहस्राक्षः-सहस्रम् अक्षीणि यस्य सः(बहुव्रीहिसमास)।
- सहस्रपात्-सहस्रं पादाः यस्य सः(बहुव्रीहिसमास)।
- वृत्वा-वृ-धातु से क्त्वाप्रत्यय होने पर वृत्वा रूप बनता है।
- अतिष्ठत्- स्थाधातु से लङ में प्रथमपुरुषैकवचन का रूप बनता है।

पुरु॑ष ए॒वेदं सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भव्य॑म्।
उ॒ताम॑ृ॒त॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑ना॒ति॒रोह॑ति॥२॥

पदपाठः – पुरु॑षः। ए॒व। इ॒दम्। सर्व॑म्। यत्। भू॒तम्। यत्। च॒। भव्य॑म्॥ उ॒त। अ॒मृ॒त॒ऽत्वस्य॑। ईशा॑नः। यत्। अन्ने॑न। अ॒ति॒ऽरोह॑ति॥२॥

अन्वयः – इदं सर्वं पुरुष एव, यत् भूतं, यत् च भव्यम्, उत अमृतत्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अतिरोहति।

व्याख्या – जो यह वर्तमान जगत् है वह पुरुष ही है। जो भूत या अतीत जगत्, यच्च भव्य-भविष्य जगत् वो सब भी पुरुष ही है। जैसे इस कल्प में वर्तमान प्राणिदेही सभी विराट्पुरुष के अवयव है वैसे ही अतीत और आगामी कल्प में भी जानना चाहिए। यह अमृतत्व अर्थात देवत्व के ईशानः- स्वामी है। यत्-जिस कारण से प्राणियों के भोग्य पदार्थ के निमित्त से बढ़ता है। अपनी कारणावस्था को पार करके परिदृश्यमान जगदवस्था को प्राप्त करता है जिससे प्राणियों के कर्मफलभोग के लिए जगदवस्था को स्वीकारने से यह उसका वस्तुत्व अर्थ नहीं हुआ।

सान्वयप्रतिपदार्थ – इदं सर्वं = समस्त प्रत्यक्षवर्तमान जगत्, यद् भूतं = जो अतीतकालिकविश्व, यच्च भाव्यं = जो भविष्यत्कालिक जगत्, पुरुष एव = वो सब परब्रह्म परमात्मा ही है, (सः=पुरुषः) अमृतत्वस्य = अमरता का या मोक्ष का, ईशानः = स्वामी, उत = और भी, यत् = जो कुछ भी, अन्नेन = भोज्य, पदार्थ से, अतिरोहति = वृद्धि को प्राप्त होता है, (तस्यापि ईशानः = स्वामी इत्याशयः)॥२॥

सरलार्थ – इस दृश्यमान जगत् में जो कुछ भी है वो सभी पुरुष ही है। जो कुछ हुआ और जो कुछ होगा वो सब भी वह पुरुष ही है। वो अमृतत्व का अधिपति है और साथ ही भोग्य वस्तुओं द्वारा बढ़ने वालों का भी अधिपति है।

व्याकरण

- **भव्यम्** -भूधातु से यत्प्रत्यय करने पर भव्यम यह रूप बनता है।
- **ईशानः** - ईश्-धातु से शानच प्रत्यय होने पर प्रथमा एकवचन में ईशन यह रूप बनता है।
- **अतिरोहति** - अतिपूर्वक रुह्-धातु से लट लकार प्रथमपुरुषैकवचन में यह रूप बनता है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥

पदपाठः - एतावान्। अस्य। महिमा। अतः। ज्यायान्। च। पुरुषः॥ पादः। अस्य। विश्वा। भूतानि। त्रिऽपात्। अस्य। अमृतम्। दिवि॥३॥

अन्वय - एतावान् अस्य महिमा पुरुषः च अतः ज्यायान्, विश्वाभूतानि अस्य पादः, अस्य त्रिपात् अमृतं दिवि।

व्याख्या - अतीत और अनागत वर्तमान रूप जगद् आदि ये सब भी इस पुरुष की महिमा का अपना सामर्थ्य विशेष है। न कि उसका वास्तव स्वरूप। अतः- महिमा से भी, ज्यायान्-अत्यधिक है। और ये दोनों स्पष्ट करते है। इस पुरुष के कालत्रयवर्ती प्राणिजात चतुर्थ पाद या अंश है। इस पुरुष के अविशिष्ट त्रिपाद स्वरूपम् अमृतं- विनाशरहितं सत् द्योतनात्मक या प्रकाशक प्रकाश स्वरुप में अवतिष्ठ है। यद्यपि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै.आ.८.१; तै. उ. २.१) इस वचन का परब्रह्म के अभाव से पादचतुष्टय के निरूपण में असमर्थ है तथापि ये जगत ब्रह्म के स्वरूप की अपेक्षा से अल्प है विवक्षितत्वात् पादत्वोपन्यासः।

सान्वयप्रतिपदार्थ - एतावान् = अखिल परिदृश्य जगद्, अस्य = सर्वेश्वर पुरुष, महिमा= स्वसामर्थ्य विशेष विभूति। अतः - इससे, ज्यायान् = अतिशय से और अधिक, पूरुषः = ब्रह्माण्डनायक। अस्य = ब्रह्म के, पादः = चतुर्थांश, विश्वा = समग्र, भूतानि = प्राणिजात, अस्य = जगत्स्रष्टा, त्रिपात् = एक तीन चोथाई, अमृतं = विनाशरहित, दिवि = स्वप्रकाश स्वरूप में या आकाश में रहता है॥३॥

सरलार्थ - इस पुरुष की महानता है कि यह पुरुष महिमा और ऐश्वर्य से बृहत् है। समस्त प्राणी इसके चतुर्थ अंश है। इसके तीन अंश द्युलोक में अवस्थित है।

व्याकरण

- एतावान् - एतत् + वतुप्(वत्)।
- **ज्यायान्** - ज्या + ईयसुन्।
- **विश्वा** - विश्वशब्द, नपुंसकलिङ्ग प्रथमा बहुवचन का वैदिक रूप है। विश्वानि इसका लौकिकरूप है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥४॥

पदपाठः – **त्रिऽपात्। ऊर्ध्वः। उत्। ऐत्। पुरुषः। पादः। अस्य। इह। अभवत्। पुनरिति॥ ततः। विष्वङ्। वि। अक्रामत्। साशनानशने इति। अभि॥४॥**

अन्वयः – त्रिपात्पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत्, पुनः अस्य पादः इह अभवत्, ततः साशनानशने अभि विष्वङ् व्याक्रामत्।

व्याख्या – जो यह त्रिपात्पुरुष संसार रहित ब्रह्मस्वरूप है वो द्युलोक को चल गया इस अज्ञान कार्यरूपी संसार से रहित गुणदोष में पूर्णरूप से स्थित है। उसका यह अंश माया के रूप में पुनः होकर उत्पत्ति और संहार के लिए बार बार आता है। इस सम्पूर्ण जगत में परमात्म अंशत्व है। भागवत में भी कहा है – 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' (भ० गी० १०.४२)। उसके बाद मायारूप में आकर चारों दिशाओं में देव, मनुष्य, पशु आदिरूप से विविध प्रकार से व्याप्त हुआ। किं कृत्वा। साशनानशने अभिलक्ष्य – साशन अर्थात भोजनादि व्यवहार युक्त चेतन प्राणी को तथा अनशन अर्थात भोजनादि व्यवहार रहित अचेतन गिरि नद्यादि को बनाकर उसमें वास किया। ये दोनों जैसे ही हुए वैसे ही वो ब्रह्म स्वयमेव विविध प्रकार का होकर उनमे व्याप्त हो गया।

सान्वय प्रतिपदार्थ – त्रिपात् = त्रिचतुर्थांश, पुरुषः = ब्रह्म, ऊध्वम् = ऊपर से, उद् = उत्कर्ष से, ऐत् = चला गया, या संस्थापित हो गया। अस्य = पुरुष के, पादः = चतुर्थांश, पुनः = पुनः, इह = इस लोक में, अभवत् = स्थित हुआ। ततः = उसके बाद, मायारूप में आकर या दुसरे रूप में, विष्वङ् = चारों दिशाओं में या विविधरूप होकर, साशनम् = भोजन आदि व्यवहारयुक्त चेतन प्राणी उत्पन्न किये, अनशनम् = उससे रहित अचेतन, ते साशनानशने = चेतन अचेतन को, अभि = लक्ष्य करके, वि = विशेषरूप से, अक्रामत् = व्याप्त हुआ ।।४।।

सरलार्थ – तीन चौथाई पुरुष या ब्रह्म द्युलोक में है तथा, चतुर्थ अंश इसी लोक में है। वो चेतन और अचेतन में विविधरूप से व्याप्त है।

व्याकरण

- **उदैत्** – उत्पूर्वक इ धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- **व्यक्रामत्** –विपूर्वक क्रम्–धातु लङ् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- **साशनाशने** – अश्–धातु से ल्युट् प्रत्यय, अशनेन सहितं साशनम्, अशनेन रहितम् अनशनम्, साशनम् च अनशनम् चेति साशनाशने यहां द्वन्द्वसमास है।

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥५॥

पदपाठः- तस्मात्। विऽराट्। अजायत। विऽराजः। अधि। पुरुषः॥ सः। जातः। अति। अरिच्यत। पश्चात्। भूमिम्। अथो इति। पुरः॥५॥

अन्वयः – तस्मात् विराड् अजायत, विराजः अधिपुरुषः। सः जातः भूमिम् अथो पुरः अत्यरिच्यत।

व्याख्या – विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपञ्च्यते। उस आदिपुरुष से विराट् ब्रह्माण्डदेहउत्पन्न हुआ। विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट्। विराजोऽधि अर्थात विराट देह के ऊपर, उसी देह के आधार पर पुरुष उत्पन्न हुआ। इसप्रकार यह समस्त वेदान्त को जानने वाला परमात्मा स्वयं ही देवतात्म जीव हो गया। एतच्चाथर्वाणिका उत्तरतापनीये विस्पष्टमामनन्ति- स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः केशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव (नृ० ता० २.१.९) इति। वह उत्पन्न हुआ विराट्पुरुष भिन्न हो गया। विराट से भिन्न देवतिर्यङ् मनुष्यादिरूप में हुआ। पश्चात् देवादि जीव के बाद भूमि को बनाया। भूमि के सृष्टी के बाद जीवों के शरीर को बनाया। पूर्यन्ते सप्तभिरधातुभिरिति पुरः शरीराणि।

सान्वयप्रतिपदार्थः – तस्माद् = उस आदिपुरुष से, विराट् = ब्रह्माण्डदेह, अजायत = उत्पन्न हुआ, विराजः अधि = विराट देह के ऊपर, उसी देह को अधिकरण करके, पूरुषः = एक पुरुष (अजायत), स जातः = उत्पन्न विराट्पुरुष, अत्यरिच्यत = अतिरिक्त हुआ, देव-तिर्यङ्-मनुष्यादिरूपहुए। पश्चाद् = देवादिजीवभाव से ऊपर, भूमिं = मही, उत्पन्न हुई। अथो = भूमि के सर्जन के अनन्तर, पुरः = शरीर, बनाये।॥५॥

सरलार्थ – आदिपुरुष से विराट् उत्पन्न हुआ, विराट से जीवात्मा उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होने से पहले ही उसने स्वयं ही देव और मनुष्यरूप में पृथक कर दिया। उसके बाद पृथिवी उत्पन्न हुई फिर जीवात्मा के लिए शरीर को निर्मित किया।

व्याकरण

- विराट् – विपूर्वक राज्-धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर यह शब्द बना।
- अजायत – जन्-धातु से लङ् लकार में प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- अत्यरिच्यत – अतिपूर्वक रिच्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में।

पाठगत प्रश्न 18.1

1. पुरुषसूक्त का ऋषि, छन्द और देवता कौन है?
2. दशाङ्गुलम्शब्द का क्या तात्पर्य है?
3. ईशानः का अर्थ क्या है?
4. पुरुष का चतुर्थ पाद क्या है?

टिप्पणियाँ

5. पुरुष के अवशिष्टत्रिपाद कहां है?
6. यद्यपि पुरुष के पादचतुष्टय का निरूपण सामर्थ्य से परे था फिर भी कैसे पादत्व का वर्णन किया।
7. विश्वा का लौकिक रूप क्या है?
8. उदैत् ये रूप कैसे सिद्ध हुआ?
9. साशनानाशन का क्या अर्थ है?
10. पुरः का क्या अर्थ है?

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥६॥

पदपाठः- यत्। पुरुषेण। हविषा। देवाः। यज्ञम्। अतन्वत॥ वसन्तः। अस्य। आसीत्। आज्यम्। ग्रीष्मः। इध्मः। शरत्। हविः॥६॥

अन्वयः - यत् देवाः पुरुषेण अतन्वत। अस्य वसन्तः आज्यम् आसीत्, ग्रीष्मः इध्मः, शरत् हविः(चासीत्)।

व्याख्या - जब शरीर के उत्पन्न होने पर देवों ने आगे की सृष्टि के सिद्धि के लिए बाह्यद्रव्य के उत्पन्न न होने से हवि से पुरुष को ही मन से हविषत्व का संकल्प करके पुरुष से मानस यज्ञ को किया। उस समय इस यज्ञ में घृत वसन्त ऋतु ही थी अर्थात उसी का आज्यत्व के रूप में सङ्कल्प किया। इस प्रकार ग्रीष्म इंधन था। अर्थात उसी को ही ऊर्जा के रूप में सङ्कल्पित किया। फिर शरद् हवि थी। उसी को पुरोडाशादि हवि के रूप में सङ्कल्पित किया। पहले पुरुष की हवि को सामान्यरूप से नहीं माना गया है। अनन्तर में वसन्तादी को आज्यादि विशेष रूपत्व से सङ्कल्प किया गया है।

सान्वयप्रतिपदार्थः - देवाः = सुर, यत् = जब, पुरुषेण = पुरुष को कहने वाली हवि द्वारा, यज्ञम् = मानसयाग, अतन्वत = विस्तारित किये। अस्य = यज्ञ का, आज्यं = घृत, वसन्तः = ऋतु ही, आसीत् = था। इध्मः = समिद् इन्धनविशेष, ग्रीष्मः = उष्ण ऋतु। हविः = पुरोडाशादिहवि पदार्थ, शरद् = शरद् ऋतु आसीत् = हुआ॥६॥

सरलार्थः - जब देवताओं ने पुरुष रूप मानसिक यज्ञ को हवि द्वारा सम्पादित किया तब उस यज्ञ में वसन्त ऋतु यज्ञ का घृत, ग्रीष्म ऋतु समिधा तथा शर ऋतु हवि के रूप में थी।

व्याकरणम्

- **अतन्वत** - तनु विस्तारे इस धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥७॥

पदपाठः - **तम्। यज्ञम्। बर्हिषि। प्र। औक्षन्। पुरुषम्। जातम्। अग्रतः॥ तेन। देवाः। अयजन्त। साध्याः। ऋषयः। च। ये॥७॥**

अन्वयः - अग्रतः जातं तं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रौक्षन् तेन देवाः ये साध्याः ऋषयः च अयजन्त।

व्याख्या - साधनभूत यज्ञ को उन्होंने पुरुष को पशुत्व भावना से बलि के लिए खूटे से बाँधा ऋषियों ने मानस यज्ञ में शुद्ध किया। ये सब कैसे हुआ वो यहां बताया गया है। समस्त सृष्टी के पूर्व पुरुष उत्पन्न हुआ। और ये पहले भी कहा जा चुका है 'तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः' इति। उस पुरुष रूप पशु से देव उत्पन्न हुए। मानस याग को निष्पादित किया। वे कौन देव है, वो यहां बताया गया है। सृष्टि के लिए साधन योग्य तथा उसके अनुकूल प्रजापति आदि अनेक ऋषियों और जो मन्त्रद्रष्टा है उन सभी ने यजन किया।

सान्वयप्रतिपदार्थ - तं = पुरुष को, अग्रतः = बाद में, जातं = प्रादुर्भूत, यज्ञं = यज्ञ के साधनभूतया सम्पूजनीय, पुरुषं = पशुत्वभावना से खूटे पर बाँधा गया है, (देवाः = सुराः) बर्हिषि = मानसिकयाग में, दुर्वा या, कुशा पर पूर्णरूप से शुद्ध किया। देवाः = अमर, साध्याः = सृष्टिसाधन के योग्यप्रजापति आदि, ये = पुरुष,और ऋषियों ने जो ब्रह्मवेत्ता और मन्त्रद्रष्टा है, (उन सभी ने) तेन = प्रथित पुरुष से, अयजन्त = याग किया।।७।।

सरलार्थ - सर्व प्रथम उत्पन्न यज्ञीय पुरुष को कुशा पर रखकर जल से पवित्र किया। उसके बाद उस शुद्ध पुरुष से देवों ने प्रजापत्यादि सृष्टकर्ता और यज्ञकर्ता ऋषियों ने यज्ञ को सम्पादित किया।

व्याकरण

- **प्रौक्षन्** - प्रपूर्वक उक्ष्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बना।
- **अयजन्त** - यज्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बना।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये॥८॥

पदपाठः - तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः। सम्ऽभृतम्। पृषत्ऽआज्यम्॥ पशून्। तान्। चक्रे। वायव्यान्। आरण्यान्। ग्राम्याः। च। ये॥८॥

अन्वयः - सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् पृषदाज्यम् सम्भृतम्, वायव्यनि आरण्यानि ये च ग्राम्याः तान् चक्रे।

व्याख्या - सर्वहुतः। सर्वात्मक पुरुष जिस यज्ञ में आहूत किया गया हो वो सर्वहूत् है। उस पूर्वोक्त मानस यज्ञ से दधिमिश्रितघृत सम्पादित हुआ। दधि और घृत भोग्य पदार्थ बनाये। फिर उससे वायव्य

और आरण्य पशु उत्पादित हुए। आरण्य पशु हरिणादि है। और ग्राम्य गौ अश्व आदि भी हुए। पशुओं को अन्तरिक्ष द्वारा वायुदेवता ने, यजुर्ब्राह्मण में कहते है 'वायवःस्थेत्याह वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः। अन्तरिक्ष देवता से पशु। वायव एवैनान्परिददाति' (तै.ब्रा. ३.२.१.३) इति।

सान्वयप्रतिपदार्थ – तस्मात् = पुरुषमेध से, सर्वं हूयते यस्मिन् स सर्वहुत्, तस्मात् सर्वहुतः = सर्वात्मकहवनशील से, यज्ञात् = यज्ञ से, पृषत् तद् आज्यम् पृषदाज्यं = दधिमिश्र घृत, सम्भृतम् = समुत्पन्नया सम्पादित किया, (तस्मात् सम्भृतात् पृषदाज्यात्) वायव्यान् = वायुदेवता, नभचर इत, आरण्यान् = अरण्ये भवान्, हरिणादि को, ये च = किया गया, ग्रामे भवाः ग्राम्याः = ग्राम में होने वाले गवाश्वादि, तान् = पशुओं को, चक्रे = उत्पादित किया।।८।।

सरलार्थ – उस सर्वहुत यज्ञ से दधिमिश्रित घृत एकत्र किया। फिर उस घृत से आकाशस्थ विहग, आरण्यकपशु और ग्राम्यपशु उत्पन्न हुए।

व्याकरणम्

- **सर्वहूतः** – सर्वं हूयते यस्मिन्; तस्मात्। सर्व हू क्विप्, पञ्चमी एकवचन।
- **पृषदाज्यम्** – पृष्-धातु शतृप्रत्यय, पृषत् च तद् आज्यं च (कर्मधारयः)।
- **सम्भृतम्** – सम्पूर्वक भृ धातु क्तप्रत्यय।
- **वायव्यान्** – वायुशब्द से यत्प्रत्यय, उससे द्वितीयाबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **आरण्यान्** – अरण्यशब्द से अण्प्रत्यय, उससे द्वितीयाबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **ग्राम्याः** – ग्रामशब्द से यत्प्रत्यय, उसे प्रथमाबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **चक्रे** – कृधातु से लिट् लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुषैकवचन में यह रूप बनता है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥९॥

पदपाठः – **तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः। ऋचः। सामानि। जज्ञिरे॥ छन्दांसि। जज्ञिरे। तस्मात्। यजुः। तस्मात्। अजायत॥९॥**

अन्वयः – सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे, तस्मात् छन्दांसि तस्मात् यजुः अजायत।

व्याख्या – सर्वहुत अर्थात् उस पूर्वोक्त यज्ञ से ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से गायत्री आदि उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से यजुर्वेद भी उत्पन्न हुआ।

सान्वयप्रतिपदार्थः – तस्मात् = पूर्ण हुए, सर्वहुतः = अशेषहवनशीलत्व से, यज्ञात् = यज्ञ से, ऋचः = ऋग्वेद, सामानि = सामवेद, जज्ञिरे = उत्पन्न हुए, तस्मात् = पुरुषमेध कहलाने वाले यज्ञ से,

छन्दांसि = गायत्री आदि, जज्ञिरे = प्रादुर्भूत हुए, तस्मात् = सम्पादित यज्ञ से, यजुः = यजुर्वेद भी उत्पन्न हुआ,अजायत =, समुत्पन्न हुआ।।९।।

सरलार्थ – उस सर्वहुत यज्ञ से ऋग्वेद, सामवेद, गायत्र्यादि छन्द और यजुर्वेद उत्पन्न हुए।

व्याकरणम्

- जज्ञिरे – जन्–धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- अजायत – जन्–धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्मांज्जाता अजावयः।।१०।।

पदपाठः- तस्मात्। अश्वाः। अजायन्त। ये। के। च। उभयादतः।। गावः। ह। जज्ञिरे। तस्मात्। तस्मात्। जाताः। अजावयः।।१०।।

अन्वयः – तस्मात् अश्वाः अजायन्त, ये के च उभयादतः, तस्मात् ह गावः जज्ञिरे, तस्मात् अजावयः जाताः।

व्याख्या – उस पूर्वोक्त यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए और फिर वो भी जो अश्व के अतिरिक्त गर्दभ और अश्वतर है, उभयादतः ऊर्ध्व अधोभाग में दन्तयुक्त है, वे भी हुए। उसके बाद उस यज्ञ से गाय उत्पन्न हुई। और फिर उस यज्ञ से बकरी और भेड़ हुए।

सान्वयप्रतिपदार्थ – तस्मात् = पूर्व में कहे गये यज्ञ से, अश्वाः = घोड़े, ये के च = अश्व से अतिरिक्त गर्दभ आदि, उभयोः भागयोः दन्ता येषां ते उभयादतः = ऊर्ध्व और अधोभाग में दन्तयुक्त है, वो भी, अजायन्त = समुत्पन्न हुए तस्मात् = पूर्वोक्त यज्ञ से, ह = स्फुटं, गावः = धेनु, जज्ञिरे = प्रादुर्भूत हुए, तस्मात् = यज्ञ से, अजाश्च अवयश्च अजावयः = बकरी भेड़ आदि ने, जाताः = जन्म लिया।।१०।।

सरलार्थ – उस यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए जिनके ऊर्ध्वभाग और अधोभाग में दन्त होते है, गाय और बकरी उत्पन्न हुए।

व्याकरण

- **अजायन्त** – जन्–धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **उभयादतः** – उभयोः दन्ताः येषां ते(बहुव्रीहिसमासः)
- **जज्ञिरे** – जन्–धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **अजावयः** – अजाश्च अवयश्च(द्वन्द्वसमासः)।

पाठगत प्रश्न 18.2

1. यज्ञ में कौनसी ऋतु आज्य थी?
2. यज्ञ में कौनसी ऋतु समिधा थी?
3. यज्ञ में कौनसी ऋतु हवि थी?
4. उस पुरुषरूप पशु से कौन देव उत्पन्न हुए?
5. आरण्यक पशु किससे उत्पन्न हुए?
6. उभयादतः इस शब्द से क्या तात्पर्य है?
7. पृषदाज्य रूप कैसे सिद्ध हुआ?
8. प्रौक्षन् रूप कैसे सिद्ध हुआ?
9. वायव्यान् रूप कैसे कथं सिद्ध हुआ?
10. जज्ञिरे रूप कैसे सिद्ध हुआ?

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥११॥

पदपाठः - यत्। पुरुषम्। वि। अदधुः। कतिधा। वि। अकल्पयन्॥ मुखम्। किम्। अस्य। कौ। बाहू इति। कौ। ऊरू इति। पादौ। उच्येते इति॥११॥

अन्वयः - यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्, अस्य मुखं किम्, अस्य बाहू कौ, ऊरु कौ पादौ उच्येते।

व्याख्या - प्रश्नोत्तर रूप से ब्राह्मणादि सृष्टि को ब्रह्मवादियों के प्रश्न कहते है। प्रजापति से जब पुरुष उत्पादित हुआ तब वो कितने प्रकार से कल्पित हुआ। इस पुरुष का मुख कौन था? कौन बाहू थे? और कौन पाद कहलाये? प्रथमतया सामान्यरूप से प्रश्न है पश्चात् मुख कौन है इत्यादि विशेष विषयगत प्रश्न बताए गये है।

सान्वयप्रतिपदार्थः - (देवाः = पुरन्दर या इंद्र आदि ने) यत् = जब, पुरुषं = विराट रूप को, व्यदधुः = सङ्कल्प से समुत्पादित किया, (तद्) कतिधा = कितने प्रकार से, व्यकल्पयन् = विविधरूपों की कल्पना की। अस्य = पुरुष का = मुखं = आनन, किम् आसीत् = कौन था, किम् बाहू = भुज कौन, किम् ऊरू = जङ्घा कौन,थे, किम् पादौ = चरण कौन थे, उच्येते = अब कहते है।।११।।

सरलार्थः – देवों ने पुरुष को विविध भाग और विविध रूप से विभक्त किया है। उस पुरुष का कौनसा मुख है, बाहू कौन है,उसकी उरू कौन है, और उसके पाद कौन है?

व्याकरण

- **व्यदधुः** – वि पूर्वक धा धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप निष्पन्न होता है।
- **व्यकल्पयन्** – वि पूर्वक कप्प्-धातु से णिच् लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **उच्येते** – बरू-धातु से कर्म में लट् लकार प्रथमपुरुषद्विवचन में यह रूप बनता है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१२॥

पदपाठः – **ब्राह्मणः। अस्य। मुखम्। आसीत्। बाहू इति। राजन्यः। कृतः॥ ऊरू इति। तत्। अस्य। यत्। वैश्यः। पत्ऽभ्याम्। शूद्रः। अजायत॥१२॥**

अन्वयः – ब्राह्मणः अस्य मुखम् आसीत्, राजन्यः बाहू कृतः, यत् वैश्यः तत् अस्य ऊरूः, पद्भ्यां शूद्रः अजायत।

व्याख्या – अब पूर्वोक्त प्रश्न के उत्तर देखते हैं। इस प्रजापति से ब्राह्मण अर्थात ब्राह्मणत्व जाति विशिष्ट पुरुष मुख था मुख से उत्पन्न हुआ। जो यह राजन्य अर्थात क्षत्रियत्व जातिमान् है वो बाहु से निष्पादित है या बाहु से उत्पादित है। उसके बाद अब इस प्रजापति से जो वैश्य हुए वो जंघाओं से उत्पन्न हुए। फिर पैरों से शूद्र अर्थात शूद्रत्व जातिमान् पुरुष हुआ। और इस प्रकार से ये मुखदियों से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति यजुःसंहिता में सप्तमकाण्ड में 'स मुखतस्रिवृतं निरमिमीत'(तै०स० ७. १.१.४) स्पष्टरूप से बताया गया है। अतः प्रश्नोत्तर में भी उसी प्रकार देखना चाहिए।

सान्वयप्रतिपदार्थ – अस्य = पुरुष या परमेश्वर का, मुखम् = आनन, ब्राह्मणः = द्विज, आसीत् = था। राजन्यः = क्षत्रिय, बाहू = भुजा जो शौर्यपराक्रमसमन्वित है, कृतः = निष्पन्न है। यत् = जो, वैश्यः = वैश्यजातिमान् पुरुष है, तत् = वो ऊरू = जङ्घा से। शूद्रः = शूद्रजातिमान् पुरुष, पद्भ्याम् = चरणों से, अजायत = समुत्पन्न हुआ॥१२॥

सरलार्थः – ब्राह्मण इसका मुख था अर्थात् मुख से उत्पन्न हुआ। क्षत्रिय इसके हस्त थे अर्थात् हाथों से उत्पन्न हुए। वैश्य इसके जंघा थी अर्थात् जंघाओं से उत्पन्न हुआ। शूद्र इसके पाद थे अर्थात् पैरों से उत्पन्न हुआ।

व्याकरणम्

- आसीत्- अस्-धातु से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥१३॥

पदपाठः – चन्द्रमाः। मनसः। जातः। चक्षोः। सूर्यः। अजायत॥ मुखात्। इन्द्रः। च। अग्निः। च। प्राणात्। वायुः। अजायत॥१३॥

अन्वयः – मनसः चन्द्रमाः जातः, चक्षोः सूर्यः अजायत, मुखात् इन्द्रः च अग्निः च, प्राणात् वायुः अजायत।

व्याख्या – जैसे दधि आज्यादि द्रव्यों से गवादि पशु, ऋगादिवेद, ब्राह्मणादि मनुष्य उससे उत्पन्न हुए उसी प्रकार से चन्द्रादि देव भी उसी से उत्पन्न हुए। प्रजापति के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। और चक्षु से सूर्य भी उत्पन्न हुआ। इसके मुख से इन्द्र और अग्नि देव् उत्पन्न हुए। इसके प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।

सान्वयप्रतिपदार्थ – (अस्य = पुरुषस्य) मनसः = चेतसः, चन्द्रमाः = चन्द्रः (हिमांशुः), जातः = समुत्पन्नः। चक्षोः = लोचनाभ्यां, सूर्यः = भास्करः, अजायत = प्रादुर्भूतः। श्रोत्राद् = कर्णात, वायुः = मातरिश्वा, प्राणश्च = जीवः। मुखात् = आननात, अग्निः = अनलः (वह्निः), अजायत = समुद्भूतः॥१३

सरलार्थ – उस पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ, मुख से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए, प्राणों से वायु उत्पन्न हुई।

व्याकरण

- अजायत – जन्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- मनसः – नस्-शब्द के षष्ठ्येकवचन और पञ्चम्येकवचन में यह रूप बनता है।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥१४॥

पदपाठः – नाभ्याः। आसीमत्। अन्तरिक्षः। शीर्ष्णः। द्यौः। सम्। अवर्तत॥ पत्ऽभ्याम्। भूमिः। दिशः। श्रोत्रात्। तथा। लोकान्। अकल्पयन्॥१४॥

अन्वय – नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत् शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत, पद्भ्यां भूमिः, श्रोत्रात् दिशः, तथा लोकान् अकल्पयन्।

व्याख्या – जैसे प्रजापति के मन से चन्द्र की रचना हुई, वैसे ही अन्तरिक्षादि लोकों को देवों ने प्रजापति के नाभ्यादि से उत्पादित किये। प्रजापति के नाभि में अन्तरिक्ष था। शिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ। इसके पांवों से भूमि उत्पन्न हुई। इसके श्रोत्र से दिशाएँ उत्पन्न हुई।

सरलार्थ – पुरुष के नाभिमण्डल से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ, शिर से द्युलोक, पाद से भूमि, कर्ण से दिशा उत्पन्न हुए। इस प्रकार से उसने लोक की सृजना की।

व्याकरण

- **समवर्तत** – सम्पूर्वक वृत्–धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- **अकल्पयन्** – क्लृप्–धातु से लङ लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥१५॥

पदपाठः – सप्त। अस्य। आसन्। परिऽधयः। त्रिः। सप्त। सम्ऽइधः। कृताः॥ देवाः। यत्। यज्ञम्। तन्वानाः। अबध्नन्। पुरुषम्। पशुम्॥१५॥

अन्वयः – यत् देवाः यज्ञं तन्वानाः पुरुषं पशुम् अबध्नन्, अस्य सप्त परिधयः आसन्, त्रिः सप्त समिधः कृताः।

व्याख्या – इस कल्पिक यज्ञ की गायत्र्यादी सप्त छन्द परिधियाँ थी। आवहनीय की तीन परिधियाँ उत्तर वेदिका की तीन और आदित्य सप्तम परिधि प्रतिनिधि रूप में थी अतः कहते है – 'न पुरस्तात्परिदधात्यादित्यो ह्येवोद्यन् पुरस्ताद्रक्षांस्यपहन्ति' (तै०स० २.६.६.३) इति। इसीलिये आदित्य सहित सप्त परिधीयाँ यहां छन्द रूप में है। तथा समिधाएं सात को तीन से गुणा करने पर २१ हुई 'द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोकाः असावादित्य एकविंशः' (तै०स० ५.१.१०.३) अर्थात "द्वादश मास, पञ्च ऋतु, ये तीन लोक और एक आदित्य कुल २१" इस श्रुति से पदार्थ एकविंशति लकड़ी से युक्त समिधा के रूप में हुई। जो यह पुरुष है उस पुरुष को देवों ने प्रजापति ने मानस यज्ञरूप में बढ़ाया विराट्पुरुष को ही पशुरूप में मान कर बाँधा। इसीलिए पूर्व में जो पुरुष को हवि का रूप कहा गया है।

सान्वयप्रतिपदार्थः – अस्य = मानसयाग की, सप्त = सप्त, परिधयः = मर्यादा, आसन् = निर्मित हुई। त्रिःसप्त (३०७) = एकविशति, समिधः = समिधाएँ, कृताः = बनाई। यत् = जब, यज्ञं = मानसयाग का, तन्वानाः = विस्तार किया, देवाः = पुरन्दर आदि, पुरुषं = विराट्पुरुष को, पशुम् = पशुरूप में, अबध्नन् = बांधा, भावितवन्त इत्याशयः॥१५॥

सरलार्थ – जब देवों ने यज्ञ से उत्पन्न पुरुषरूप पशु को बाँधा तब उस मानस याग की सप्त परिधियां और एकविंशत (२१) समिधाएँ बनाई।

व्याकरण

- तन्वानाः – तन्–धातु से शानच् प्रथमाबहुवचन में यह रूप बनता है।
- अबध्नन् – बन्ध्–धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥१६॥

पदपाठः – **यज्ञेन। यज्ञम्। अयजन्त। देवाः। तानि। धर्माणि। प्रथमानि। आसन्॥ ते। ह। नाकम्। महिमानः। सचन्त। यत्र। पूर्वे। साध्याः। सन्ति। देवाः॥१६॥**

अन्वयः – देवाः यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त, तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। ते महिमानः ह नाकं सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति।

व्याख्या – पूर्व में कहे गये प्रपञ्च का अर्थ संक्षिप्त करके दिखाते है। देवों ने प्राणरूप प्रजापति को यथोक्त मानस संकल्प से यज्ञस्वरूप प्रजापति का यजन किया। उस पूजन से वो पुरुष प्रसिद्ध धर्म अर्थात जगद्रुप विकारों का धारक प्रथमया मुख्य है। इसप्रकार सृष्टिप्रतिपादक सूक्त भाग का अर्थ हुआ। अब उपासना और उसका फलानुवादक भाग का अर्थ बताते हैं। देव रहते हैं उस विराट् प्राप्ति रूप स्वर्ग को महिमाशाली वे उपासक महात्मा प्राप्त करते है।

सान्वयप्रतिपदार्थ – देवाः = पुरन्दर आदि देव, यज्ञेन = मानसयाग से, यज्ञम् = यज्ञस्वरूप प्रजापति, अयजन्त = पूजा की। तानि = वो पुरुष प्रथमानि = मुख्य, धर्माणि = जगद्रूपविकार धारक है, आसन् = हुए या थे। वे यज्ञ के अनुष्ठाता या उपासक है, ह = निश्चय से, महिमानः = माहात्म्ययुक्त हुए, नाकं = स्वर्ग को, सचन्त = प्राप्त हुए, यत्र = स्वर्ग में, पूर्वे = पुरातन, साध्याः = देवगण, देवाः = सुर, सन्ति = है॥१६॥

सरलार्थ – देवों ने यज्ञ द्वारा यज्ञस्वरूप प्रजापति को पूजा। वो ही सर्वप्रथम धर्म है। वे उपासक भी दिव्यस्वर्ग को प्राप्त करते है जहाँ स्वर्ग में सिद्धिप्राप्त प्राचीन देव है।

व्याकरण

- **अयजन्त** – यज्-धातु से लङ् लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- **सचन्त** – सच्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन में वैदिकरूप बनता है।

पाठगत प्रश्न 18.3

1. पुरुष के मुख से कौन उत्पन्न हुआ?
2. पुरुष के बाहों से कौन उत्पन्न हुए?
3. पुरुष की जांघो से कौन उत्पन्न हुए?
4. पुरुष के पाद से से कौन उत्पन्न हुए?
5. पुरुष के किस अंग से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ?

6. पुरुष के चक्षु से क्या उत्पन्न हुआ?
7. पुरुष के मुख से कौन उत्पन्न हुआ?
8. पुरुष के नाभिमण्डल से कौन उत्पन्न हुआ?
9. पुरुष के शिर से कौन उत्पन्न हुआ?
10. पुरुष के पाद से कौन उत्पन्न हुआ?

18.3 अब मूलपाठ जानेंगे

(यहां से आगे षट् मन्त्र शुक्लयजुर्वेदीय है। उत्तरनारायणीयसूक्त। शुक्लयजुर्वेद। ३१ अध्याय। इसका उवटभाष्य और महीधरभाष्य उपलब्ध है। यहां उवटभाष्यांश को ग्रहण करके /मुख्यरूप से महीधरभाष्य को ही किञ्चित् परिवर्तन के साथ उपस्थापित किया है। सायणभाष्य का भी सन्धिविच्छेदादि करके कठिनांशों के अलावा दिया है)

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥१७॥

व्याख्या – अद्भ्यः संभृत इति उत्तरनारायणेन आदित्यम् उपस्थाय इति (१.३.६.२.२०) षट् मन्त्र उत्तरनारायण द्वारा। अंतिम से पहले दो अनुष्टुभ और शेष त्रिष्टुभ में है। आदित्य देवत्याः। पूर्वकल्प में पुरुषमेधकर्ताओं ने आदित्यरूप को प्राप्त किया।

जल से पृथिवी का ग्रहण है, जो भूतपञ्चमहाभूत का उपलक्षक है। भूतपञ्चक से रस प्राप्त हुआ। फिर विश्वकर्मा और काल के रस से ये रस सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। पंचभूत और काल के प्रति कारणत्व से पुरुषमेध याजियों ने लिङ्ग शरीर में पञ्चभूत और काल उत्पन्न किये। ततः तुष्टेभ्यः कश्चिद् रसविशेषफलरूपः उत्तमजन्मप्रदः उत्पन्नः इत्यर्थः। तस्य रसस्य रूपं विदधत् धारयन् त्वष्टा आदित्यः एति प्रत्यहम् उदयं करोति। अग्रे प्रथमं मर्त्यस्य मनुष्यस्य सतः तस्य पुरुषमेधयाजिनः आजानदेवत्वं मुख्यं देवत्वम् सूर्यरूपेण। द्विविधा देवाः कर्मदेवाः आजानदेवाः च। कर्मणा उत्कृष्टेन देवत्वं प्राप्ताः कर्मदेवाः। सृष्ट्यादौ उत्पन्नाः आजानदेवाः। ते कर्मदेवेभ्यः श्रेष्ठाः। ये शतं कर्मदेवानाम् आनन्दाः स एक आजानदेवानाम् आनन्दः। (बृह.मा. ४.१.३५) इति श्रुतेः। सूर्यादय आजानदेवाः॥१७॥

सायणभाष्यम् – उत्तरनारायण आदित्य को मानते है। ये षट् ऋचाएं उत्तरनारायण की है। उनमे भी आदि की तीन त्रिष्टुभ फिर दो अनुष्टुप और अन्त की त्रिष्टुप् में है। श्रीनारायण देवता मन्त्र आदित्य द्वारा विनियुक्त माने गये है। पूर्वकल्पान्तरीयेषु पुरुषमेधयज्ञादि भावम् आपन्नः परम्पराकोटिसञ्चारीति श्रूयते। जो जल के संसर्ग से और पृथिवी के संसर्ग से उत्पन्न हुआ। पृथिवी पर जलग्रहण करके पञ्च महाभूतों का उपलक्षण किया। उसके बाद दिन बना, प्रश्न निरूपण द्वारा अध्यधिकार रूप में। फिर पंचभूतों से जो पहले उत्पन्न हुआ। भृद् भरणे। पुण्य संस्कार से अनुरञ्जित भूतपञ्च व्याप्त हुए। इस प्रकार उत्पन्न होने के पश्चात् रस से विश्वकर्मा बने। रस अर्थात राग, उस रस से विश्वकर्मा, विश्वकर्मा के राग से समस्त जगत् के कर्ता के लिए ईश्वरेच्छा

उत्पन्न हुई। सूक्ष्म शरीर में अवस्थित सूक्ष्मदेह का त्वष्टा श्रीभगवान् आदित्य ने जो रूप धारण किया है कालात्मक सविता ने विशिष्ट रूप करते हुए आता है उसकी मृत्यु से पूर्व मनुष्य के देवत्व से ही उसकी उत्पत्ति या जन्म हुआ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिं मृत्युमेंति नान्यः पन्थां विद्यतेऽयनाय॥१८॥

व्याख्या – इस सर्वोत्कृष्ट देशकाल आदि के भेद से रहित सूर्यमण्डलस्थ पुरुष को में जानता हूँ, ये ऋषि का वचन है। किस प्रकार से। आदित्य के समान वर्ण है जिसका उसको अन्य उपमा से रहित अर्थात् स्वप्रकाश में स्थित तथा तमोरहित। तमशब्द का अर्थ अविद्या है। अविद्या से भेद दर्शन होता है। उसी आदित्य को जानकर मृत्यु को पारकर परब्रह्म को प्राप्त करता है। इसके अलावा अन्य मार्ग नहीं मार्ग नहीं है। अर्थात् पुरुष को जानकर ही मृत्यु को पार किया जाता है। मृत्यु से बचने के लिए इसके अलावा अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। सूर्यमण्डल पुरुष अर्थात् आत्मरूप को ही जानकर मुक्ति होती है।।१८।।

सायणभाष्यम् – इस प्रतीत होते हुए पुरुष को **पुरि शेते इति पुरुषः**। इस पुरुष से भिन्न व्यवहार होता है –महान्त अर्थात अपरिच्छिन्न और अनन्त। आदित्यवर्ण– **आदित्यस्य वर्ण इव वर्णो यस्य स आदित्यवर्णः** अर्थात् स्वयं प्रकाश स्वरूप। अज्ञान के आकार से ऊपर अपने तेज से अज्ञानान्धकार को निम्न करके इस वर्तमान महान्त अर्थात् आदित्यान्तस्थ पूर्ण पुरुष का साक्षाद् दर्शन, अहं–शोधित–पदार्थ में जानता हूँ।इस महान पुरुष आदित्य वर्ण पुरुष को जानो। इस आदित्य वर्ण महान्त पुरुष को जाना या नहीं जाना इसी व्यतिहार से मैं जानता हूँ। सभी उपनिषदों के तात्पर्य का प्रतिपाद्यार्थ कहा है – **तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमिति**। सहस्रशीर्ष इत्यादि से अभिहित परमेश्वर है उसी को जानकर ही मृत्यु युक्त संसार को पार किया जा सकता है अन्य किसी कर्म आदि से नहीं। इसप्रकार उसी को जानकर ही मृत्यु को पार करके स्वस्वरूप को प्राप्त करता है या परब्रह्म के पास जाता है, ये उपाय ही है।। स्वस्वरूप की प्राप्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है।।१८।।

पाठगत प्रश्न 18.4

1. अद्भ्यः सम्भृतः इति पुरुषसूक्त में वर्णित मन्त्र कहाँ से लिए गये है?
2. पुरुषसूक्त में किसने आदित्यरूप को प्राप्त किया?
3. देवघ्त्वमाजानघ्मग्रेघ यहाँ व्याख्याकार ने कितने प्रकार के देव बताए है और उनके भेद?
4. वेदाघ्हमेघ्तं पुरुघ्षं मघ्हान्तघ्म् यहाँ पुरुष का महत्त्व क्या है?
5. आदित्यवर्ण तमसः परस्तात् यहाँ तमः पदार्थ क्या है?
6. किसकी जानकर मृत्यु को पार किया जा सकता है?
7. नान्यः पन्थाः अयनाय विद्यते। कहाँ जाने के लिए और कोनसा पन्थ है?

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥१९॥

व्याख्या – किंभूत: इति विशिष्यते। सर्वात्मा प्रजापति हृदय में स्थित होते हुए भी गर्भ में विचरण करता है। और जो उत्पद्यमान नहीं होते हुए भी बहुत रूपों में कार्य कारण रूप से रहता है। माया द्वारा प्रपञ्च रूप से उत्पन्न होता है। ब्रह्मविद लोग उस प्रजापति की योनि में स्थान देखते हैं और **अहं ब्रह्मास्मि** इस रूप में जानते हैं। समस्त विश्व और पंचभूत जात पदार्थ उसी कारणरूप ब्रह्म में स्थित है।

सायणभाष्य – प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजा:। तासां पति:,प्रजापति:। सभी प्राणियों के उदरमध्य में अन्तर्यामिरूप से ये विचरण करता है और वो स्वरूप से अजायमान अर्थात् देहादि से जन्म शून्य होते हुए भी उपाधिवश बहुत प्रकार से उत्पन्न होता है। अज गतिविक्षेपणयो:। अपनी माया से समस्त अजायमान से संमोहित होते हुए भी स्वयं बहुधा उत्पन्न होता है। उसके अनेक रूप होते हुए भी विद्वान् लोग उस प्रजापति की योनि में स्थान और अपने स्वरूप का साक्षात् करते हैं। उस प्रजापति में ही स्वकारण भूत समस्त विश्व और पंचभूत रहते हैं।१९॥

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहित:।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥२०॥

व्याख्या – जो प्रजापति आदित्य रूप देव के लिए दीखता है। आदित्य रूप में अत्यधिक तेज से चमकता है और जिसको देवों के पुरोहित सभी कार्यों में आगे रखते है (य: देवानां पुर: अग्रे इन्द्रत्वेन स्थित:। – इति उवट:)। जो देवों के साथ ब्रह्मरूप में सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। उस आदित्य को नमस्कार है। रोचते असौ इति रुच:। तस्मै दीप्यमानाय। इगुपध ... (पा.३.१.१३५) इति कप्रत्यय:। तथा ब्राह्मये ब्राह्मण: अपत्यं ब्राह्मि:। इञ प्रत्यय और टिलोप। ब्रह्म के अवयव भूत या ब्रह्मपुरुष के पुत्र के लिए॥२०॥

सायणभाष्यम् – देवों के लिए तप करोति प्रकाशयति च प्रकाशते। यो देवानां पुरोहित:। जो देवों का आगे से हित करता है। पूर्वो यो देवेभ्य:। जिस देव से पूर्व सभी देव अग्रणीरूप से उत्पन्न हुए। उस प्रकाश स्वरूप ब्रह्म के लिए नमस्कार। **ब्रह्मणो योग्यं ब्राह्मं**, उस प्रकाश स्वरूप आदित्य को नमस्कार॥२०॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे॥२१॥

व्याख्या – देवों ने शोभायमान या देदीप्यमान ब्रह्म के पुत्र आदित्य को सर्वप्रथम उत्पन्न करते हुए उसको कुछ वचन कहे। क्या कहा? ब्राह्मो जातौ (पा.६.४.१७१) इति निपात:। वो क्या कहा वो बताते है। य ब्राह्मण: हे आदित्य तुझे इस उक्तविधि से उत्पन्न किया उस आदित्य के वश में देव रहते हैं। आदित्य का उपासक जगत पूज्य होता है।

टिप्पणियाँ

सायणभाष्यम् – शोभायमान **ब्राह्मं ब्रह्मावयवभूतं जातावित्यनिटिलोपे च ब्राह्म** रूप बनता है। देदीप्यमान आदित्य जो ब्राह्मण के समान है। उस आदित्य को जानकर उस ब्रह्म के वश में देव है। परब्रह्म के वशवर्ति देव उसके वश के ही हो जाते है।।२१।।

श्रीश्चं ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण।।२२।।

व्याख्या – ऋषि आदित्य से प्रार्थना करते है। हे आदित्य, लक्ष्मी तेरी पत्नी है। जाया अर्थात् तेरे वश में है। (अस्य पुरुषस्य एते अवयवा: इति। उवट:)। जो सभी जनों के आश्रयणीय होती है वो लक्ष्मी। रात दिन तेरे पास में रहने वाली होने पर। नक्षत्र, तारे तेरे रूप है। तेरे ही तेज से तेज का गोलक सूर्य प्रकाशित होता है।द्यावा और पृथिवी तेरे मुख को कहते है। इस प्रकार जो तुझसे मांगते है। इष्णन् अर्थात् कर्मफल का इच्छुक। इषु इच्छायां धातु से विकरण प्रत्यय। या इष आभीक्ष्ण्ये ऋ्यादि यहाँ पर इच्छार्थक है। क्या कामना करते है वो बताते हुए कहते है। वह मेरा परलोक अच्छा होवे अर्थात् समस्त लोक मेरी कामना पूर्ण करने वाले हो। मैं मुक्त होऊ। **सर्वं खल्विदं ब्रह्मये** श्रुति वाक्य है।२२।।

सायणभाष्य – श्री अर्थात् लक्ष्मी तेरी पत्नी है।। आदित्य जिससे देखता है वो लक्ष्मी है। श्री शोभानुरूप होती है। लक्ष्मी दीप्ति लक्षण रूपिणी है। वे दोनों पत्नियाँ है, वे कौन?दिन और रात जो पत्नीत्व रूप में माने जाने पर उसके साथ रहने वाली होने से है। अश्विन्यादि नक्षत्र तेरे रूप है अर्थात् तेरे मुख है। इस प्रकार का रूप मैं तुझसे माँगना चाहता हूँ। इष्णं निषाणामुं म इषाण- सर्वलोकं म इषाण। ये दो पदरूप है जो इषुधातु के रूप और विकरण प्रत्यय है। इष्णन् अर्थात् कर्मफल का इच्छुक किं तद् इति। अमुं म इषाण- इस लोक को मेरे कर्मफल लिए चाहा, सर्वलोक मेरे लिए ही बनाया अर्थात ये सब में ही हूँ और सभी को अपनी तरह से चाहता हूँ या कामना करता हूँ। इसप्रकार आदित्य की स्तुति करते है।।२२।।

पाठगत प्रश्न 18.5

1. प्रजापतिश्चरति गर्भे ... मन्त्रांश किस सूक्त का है और यहाँ प्रजापति कौन है?
2. तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा:। यहाँ किसकी योनि का वर्णन है और कौनसी योनि तथा वो धीरजन कौन है?
3. तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।यहाँ किस पर स्थित होने का प्रसंग है?
4. पूर्वो यो देवेभ्यो जात:। यहाँ किसकी उत्पत्ति का का वर्णन है?
5. नमो रुचाय ब्राह्मये। इसमें रुचशब्द का अर्थ क्या है?और ब्राह्मयेका मूलशब्द और अर्थलिखो।
6. तस्य देवा असन् वशे इसमें किसके वश में देव है और उसका तात्पर्य क्या है?
7. देवा अग्रे तदब्रुवन् यहां क्या कहा?
8. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ इसमें श्री कौन है और किसकी पत्नी है?

पुरुष स्वरूप को बताना अत्यन्त कठिन कार्य है। विभिन्न प्रकार से उसका प्रकटन किया जा सकता है। पुरुषसूक्त सुप्रसिद्ध भी है। सर्वत्र पूजादियों में भी इसका प्रयोग विशेष रूप से होता है। यहां पुरुष स्वरूप को दो प्रकार से बताया है। इससे ज्ञात होता है कि एक ही विषय को विभिन्न शैली से प्रकटन सम्भव है। अत: यहाँ प्रदत्त प्रकार द्वारा भिन्न प्रकार से छात्रको अपना उत्तर सिद्ध करना चाहिए। क्योंकि पुरुष स्वरूप वैसा ही होता है। उसमे भेद नहीं होता है, भेद तो प्रकट शैली में होता है। अत: यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं है।

18.4 पुरुषस्वरूप

ऋग्वेद के दशम मण्डल के नवतितम (९०वां) सहस्रशीर्ष ... १६ ऋचा वाला सूक्त पुरुषसूक्त कहलाता है। इस सूक्त का देवता अव्यक्त महदादिविलक्षण चेतन पुरुष प्रजापति है। ये पुरुष वैदिक परम्परा की पराकाष्ठा तथा अन्य स्थितियों को मानता है। इसीलिए कठोपनिषद में कहा गया है-

महत: परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुष: पर:।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गति:।।इति।।

पुरि शेते इस विग्रह से पुरुष शब्द की निष्पत्ति हुई है। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में कहा है - ''अथ यस्मात् पुरुषमेधो नामेमे वै लोका: पूरयमेव पुरुषोऽयं पवते सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात् पुरुष:।'' इति। पुरुषसूक्त में उसके स्वरूप का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

मानवों के सामान्यत: एक शिर, लोचन युगल तथा पादयुगल होते है, परन्तु इस पुरुष के सर्वव्यापी, सर्वज्ञ तथा सर्वत्र विचरणशील होने से अनेक विशिष्टताए है। इसलिए इस पुरुष के सहस्र शिर तथा सहस्र नेत्र और सहस्रपाद है। यहाँ सहस्र शब्द उपलक्षण मात्र है, सहस्रपद असङ्ख्य अर्थ का द्योतक है। इसीलिए कहा है -

सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।इति।।

जैसे इस कल्प में वर्तमान सभी प्राणि देह वाले विराट्पुरुष के अवयव है, वैसे ही अतीत और आगामी कल्प में भी रहने वाले समस्त प्राणी अवयव है। उस परमात्मा या पुरुष ही समस्त जगत् का स्वामी है कोई और नहीं। इस समस्त जगत् में परमात्मा के स्वामित्व के बारे में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है- ''विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्'' (१०.४२) इति। इसलिए ये सर्ववेदान्तवित् परमात्मा स्वयं ही अपनी माया से विराड्-देहरूपी ब्रह्माण्ड रूप का सृजन करके उसमे जीवरूप में प्रवेश करके ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीव कहलाया।

इस विराट्पुरुष के अङ्गों से ही अखिल प्रपञ्च उत्पन्न हुए जिससे उसका महत्त्व स्पष्ट ही है। क्योंकि प्राचीन देवों ने यज्ञ से समस्त प्रपञ्च की सृजना की। किन्तु बाह्य द्रव्य अभाव से हवि के विना यज्ञ असम्भवत्व से और पुरुष स्वरूप से देवों ने हवि द्वारा मानसयाग किया, और कहा - ''यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत'' इति। उसी यज्ञ से ऋग, साम, यजू, गायत्र्यादि छन्द तथा अश्वगर्दभ आदि पशु उत्पन्न हुए। इस महान पुरुष के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई। राजन्य

टिप्पणियाँ

जो क्षत्रियत्व जाति वाले पुरुष उसकी बाहु से निष्पादित हुए। जंघाओं से वैश्य तथा पादों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। कहा है –

ब्राह्मणोऽस्य मुखामासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१३॥इति॥

इसी प्रकार प्रजापति के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, चक्षु से रवि, मुख से इन्द्र और अग्नि देव तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुआ। अन्तरीक्षादि लोक प्रजापति की नाभि से उत्पन्न हुए,शीर्ष से द्यौ उत्पन्न हुआ, पाद से भूमि तथा श्रोत्र से दिशाएं उत्पन्न हुई। इस प्रकार दधि आज्यादि द्रव्य गवादि पशु, ऋगादि चारों वेद, ब्राह्मण आदि मनुष्य, प्रकृतिस्थ सूर्यचन्द्र आदि सभी उसी प्रजापति के अङ्गों से उत्पन्न होने से कल्याणकारी है।

18.5 पुरुषस्वरूप

वेद ही समस्त धर्म का मूल है। ऐहिक और परलोक दोनों प्रकार के फलों से वाप्त अपूर्व साधन को जो बताता है वो भगवान् वेद है। यद्यपि उनमें कर्मकाण्ड बाहुल्यक मन्त्र प्रचूरता से प्राप्त होते है फिर भी आत्मतत्त्व प्रतिपादक मन्त्रों का महत्व भी कम नहीं है। ये वेद भगवान से अभिन्न और परोक्ष होने से दुर्गम है। आत्मा से आत्मतत्त्व का निर्णय ही इसका मुख्य लक्ष्य है। ये वेद कर्मप्रधानता से साधकों के हित कर लिए कर्मविधान का वर्णन करते है। अत एव कर्मों के साथ तत्त्वप्रतिपादनपरक सूक्त स्थान-स्थान पर उल्लेखित किये गये है। उनमें पुरुषसूक्त अतिप्रसिद्ध है।

ये शुक्लयजुर्वेद का एकत्रिंशाध्याय (३१वां) सूक्त है। ये ऋग्वेद के अष्टम अष्टक का षष्ठसूक्त है। ये सूक्त षोडश मन्त्रों से सुशोभित है। इन ऋचाओं के द्रष्टा ऋषिर्नारायण है। इसका देवता पुरुष है। अन्तिम ऋचाओं में त्रिष्टुप् छन्द तथा अवशिष्ट ऋचाओं में अनुष्टुप है। इस सूक्त में पुरुष स्वरूप निरूपित है। ये निरूपित पुरुष कौन है? तो कहते है – **पुरं शरीरं तस्मिन् शेते इति पुरुषः।** इस विषय में महाभारत में कहा है –

नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम्।
व्याप्य शेते महात्मा यस्तस्मात् पुरुष उच्यते॥ इति।

यद्वा अस्तेः व्यत्यस्ताक्षरयोगात् आसीत् पुरा पूर्वमेव ऐसा विग्रह करके पुरुष शब्द बना। इसलिए श्रुति कहती है – पूर्व में भी कहा कि ये था और है। ये ही पुरुष का पुरुषत्व है। अथवा **पुरुषु भूरिषु उत्कर्षशालिषु सत्त्वेषु सीदतीति। पुरुणि फलानि सनोति इदातीति वा। पुरुणि भुवनानि संहारसमये स्यति अन्तं करोतीति वा, पूर्णत्वात् पूरणाद् वा सदनात् वा पुरुष इति।**

उपर्युक्त अर्थ विशिष्ट वाला अव्यक्त महदादि विलक्षण चेतनस्वरूप तथा सभी प्राणियों का समष्टि रूप में ब्रह्माण्डदेह विराडाख्य पुरुष जो अनन्तशिर, चक्षु, चरणों वाला है। इनसे पुरुष का सर्वव्यापित्व कहा गया है। स्मृति में भी आकाश, वायु, अग्नि, सलिल, महि, ज्योतिष, सत्त्व दिशाएं, द्रुमयें सभी पुरुष के शरीर के रूप में कल्पित है। इस प्रकार से अनुभूत ये पुरुष सभी प्राणियों के नाभि से दश अङ्गुल छोड़कर हृदय में बैठा है। यहां इसका अर्थ अङ्गुष्ठमात्र है। ये पुरुष अन्तरात्मा

सदामनुष्यों के हृदय में सन्निविष्ट रहता है। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशत्, ये श्रुति का प्रमाण है। अथवा ये पुरुष ब्रह्माण्ड गोलकरूप भूमि में सभी ओर से ऊर्ध्व और अधोरूप में व्याप्त होकर विराजित है। ऐसे ब्रह्मवादियों का ब्रह्म के जैसे पुरुष का जगत् उत्पादन करना श्रुतिसम्मत है।

ये जो कुछ वर्तमान जगद् दिख रहा है, वो सब पुरुष का स्वरूप ही है। ये अज्ञानियों की दृष्टि में जगत् तथा ज्ञानियों की दृष्टि में वो पुरुष ही हैं। रज्जु में सर्पज्ञान के समान पुरुष में जगत ज्ञान भी अज्ञान है। न केवल वर्तमान ही बल्कि अतीत और भविष्य जगत् भी पुरुष ही है इस प्रकार वेद ने पुरुष के नित्यत्व को कहा है। ये ही पुरुष अमृतत्व का तथा मुक्ति का स्वामी है। वो ही मोक्ष का ईश्वर है जो न कभी मरता है। लेकिन पुरुष प्राणियों के कर्मफल भोग के कारण अपनी कारणावस्था को छोड़कर परिदृश्यमान जगदवस्था को प्राप्त करता हैद्य ये पुरुष प्राणियों के कर्मफलभोग के लिए जगदवस्था को प्राप्त करता है इसलिए ये उसका वास्तविक रूप नहीं है।

अतीत, अनागत तथा वर्तमान रूप निखिल जगत् पुरुष का अपने विशेष सामर्थ्य का परिणाम है। वास्तव में तो पुरुष इससे भी अधिक सामर्थ्यशाली है। इसके कालत्रय वर्तीचतुर्थांश से समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। अवशिष्ट त्रिपाद् विनाश रहित सत् अर्थात् प्रकाशरूप में अवस्थित है।

18.6 पुरुषसूक्त का सारांश

शुक्लयजुर्वेद के एकत्रिंशत्तम (३१वें) अध्याय में पुरुषसूक्त वर्णित है। इस सूक्त में षोडश(१६)मन्त्र कहे गये है।इसका ऋषि नारायण तथा पुरुष देवता है। अन्तिम मन्त्रत्रिष्टुप् छन्द में है।

अनन्तपाद-लोचन-मस्तक से युक्त परमेश्वर पुरुष ब्रह्माण्डगोलक रूप धरित्री पर सब ओर व्याप्त है तथा प्राणियों के हृदय में दशाङ्गुल परिमित स्थान को छोड़कर अवस्थित हैं। जो सब उत्पन्न है या जो सब उत्पन्न होने वाला है वो सब पुरुष ही हैं। अतीत, भविष्य और वर्तमान कालिक सभी वस्तुएं भी पुरुष है। ये पुरुष अमरत्व का स्वामी हैं। और जो ये अन्न से बढ़ते है उनका भी स्वामी भी पुरुष ही है। अतीतादि कालत्रयवर्ती प्राणिजात इसका चतुर्थ अंश है। अवशिष्ट त्रिपाद् विनाश रहित स्वप्रकाश स्वरूप में स्वर्गलोक में विद्यमान है। ये त्रिकालात्मक जगत् पुरुष की महिमा है। ये पुरुष का वास्तविक स्वरूप नहीं है। ये अपनी महिमा से भी बढ़कर है। ये ब्रह्म स्वरूप पुरुष तीन चौथाई अंश में अज्ञानरुपी कार्यसंसार से बाहर इन गुणदोषों से पृथक हरते हुए ऊपर स्थित अमृतलोक में स्थित है। उसका ही ये चतुर्थांश इस मायामय लोक के रूप में पुनः उत्पन्न हुआ। सृष्टि और संहार पुनः पुनः आते हैं। उसके बाद इस माया याग में आने के बाद चेतन अचेतन प्राणी देवमनुष्यादि रूप से विविध प्रकार के होते हुए चारों दिशाओं में व्याप्त हैं।

उस आदिपुरुष से विराड् उत्पन्न हुआ। उसी देह को अधिकरण करके एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उस सर्वज्ञ ने अपनी माया से विराट देह या विराट रूप को बनाकर स्वयं ही जीवरूप में प्रविष्ट होकर ब्रह्माण्डाभिमानी जीव बना या हुआ। वो विराट के अतिरिक्त मनुष्यादि रूप में बना। उसने क्रमशः मनुष्यादि जीवों, भूमि और जीव शरीरों को बनाया।

शरीर के उत्पन्न होने पर देवों ने बाद की सृष्टि की सिद्धि के लिए उस पुरुष को हविष्ट के द्वारा स्मरण करके मानस याग की कल्पना की। उस याग की ईंधन ग्रीष्म ऋतु, आज्य वसन्त ऋतु तथा शरद ऋतु हवि थी और इस काल्पिक याग की समिधाएँ गायत्र्यादि सप्त छन्द थे। १२ मास पञ्च ऋतुएँ, और ये तीन लोक और अदित्य एकविंशति (२१) पदार्थ एकविंशति (२१) लकड़ी रूपी इंधन उत्पन्न हुए। यज्ञ के साधन रूप में उस पुरुष को पशुत्व भाव से खूंटे से बांधकर मानस यज्ञ में सृष्टि के साधनों के अनुरूप प्रजापति आदि और उसके अनुकूल देवों और ऋषियों ने शुद्ध किया। फिर दधिमिश्रित आज्य अर्थात् घी बनाया। देवों ने उस दहीमिश्रित घी से वायव्य, आरण्य और ग्राम्य पशुओं को उत्पन्न किया। फिर उसी मुख से खग-मृग- बकरी -मेष- अश्व -नीलगाय -गर्धव-धेनु उत्पन्न हुए। क्रमशः गायत्र्यादि छन्द उत्पन्न हुए। ऋगादि वेद भी उसी यज्ञ से उत्पन्न हुए।

यज्ञपुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य, पैरों से शूद्र ये वर्णचतुष्टय उत्पन्न हुआ। फिर उसी मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि, कर्ण से वायु और प्राण उत्पन्न हुए। जैसे देवों ने प्रजापति के मन आदि से चन्द्रादि की कल्पना की उसी प्रकार देवों ने उसकी नाभि से अन्तरीक्ष, शिर से स्वर्ग, पाद से भूमि, प्राच्यादि दिशा तथा भूः भुव और स्वः तीन लोक उत्पन्न किये। इसके लिए पुरुषसूक्त में कहा है -

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥१४॥

पाठ का सार

इस पुरुषसूक्त में प्रारम्भ में पुरुष स्वरूप वर्णित है। विराट स्वरूप पुरुष सहस्र शिरों से युक्त और सहस्राक्ष से युक्त है। यद्यपि वो समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर रहता है। फिर भी उसका दशाङ्गुल परिमित स्थान में मुख्यतः निवास है। इससे उसका ब्रह्माण्ड से बाहर भी विद्यमानता ज्ञात होती है। जो कुछ भी दृश्यमान है वो सब वही पुरुष है और वो भूत, भविष्यत् अतीत कालीन है। इससे उसका अमरत्व ज्ञात होता है। इसकी महिमा जो कि इसके ऐश्वर्य से भी महान है। वो समस्त स्थावर और जङ्गम वस्तुओं में विद्यमान है। उस आदिपुरुष से विराट् उत्पन्न हुआ और विराट से जीवात्मा उत्पन्न हुआ। उस विराट से उत्पन्न होने बाद स्वयं ही देव और मनुष्य रूप से पृथक् हो गये। उसके बाद पृथिवी उत्पन्न हुई, फिर जीवात्माओं के लिए शरीर निर्मित हुआ। जब देवों ने पुरुष रूप हवि से यज्ञ सम्पादित किया तब वसन्त ऋतु घृत, ग्रीष्म ऋतु ईन्धन और शरद ऋतु हवि के रूप में थी। उसके बाद पुरुष का जल से स्नानादि करना वर्णित है। फिर पुरुष ने वायु में विचरण करते हुए पक्षी, आरण्यक पशु और ग्राम्य पशून् उत्पन्न किये। इस प्रकार इस सर्वहुत

यज्ञ से ऋगादिवेद मन्त्र और गायत्र्यादि छन्द उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से अश्व, पशु, गायें इत्यादि उत्पन्न हुए। इस पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य, पैरों से शूद्र, नाभिप्रदेश से अन्तरिक्ष मण्डल, शिर से द्युलोक, पैरों से भूमि, कर्ण से दिशाएं उत्पन्न हुई। इसप्रकार लोक की रचना हुई। सूक्त के अन्त में ये वर्णित है कि जो देवों ने यज्ञ से यज्ञपुरुष की कल्पना के है वो ही धर्म है।उसके उपासक स्वर्गलोक को प्राप्त करते है।

पाठांत प्रश्न

1. पुरुषसूक्त का सार लिखो।
2. पुरुष के किस अङ्ग से क्या उत्पन्न हुआ, इसकी मन्त्रानुसार व्याख्या करो।
3. सर्वहुत यज्ञ से क्या क्या उत्पन्न हुआ, इसकी मन्त्रानुसार व्याख्या करो।
4. पुरुषस्वरूप का वर्णन करो।
5. एतावानस्य महिमा ... इस प्रतीकरूप में उद्धृत मन्त्र को सम्पूर्ण लिखकर व्याख्या करो।
6. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः ... इस प्रतीकरूप में उद्धृत मन्त्र को सम्पूर्ण लिखकर व्याख्या करो।
7. सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि ... इस प्रतीकरूप में उद्धृत मन्त्र को सम्पूर्ण लिखकर व्याख्या करो।
8. वेदाहमेतं पुरुषम् ... इस प्रतीकरूप में उद्धृत मन्त्र को सम्पूर्ण लिखकर व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

18.1

1. नारायणऋषि, अनुष्टुप् छन्द, १६-त्रिष्टुप्, विराट् पुरुष देवता।
2. ब्रह्माण्ड से बाहर भी सभी ओर व्याप्त होकर अवस्थित है।
3. स्वामी।
4. तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले समस्त प्राणी।
5. द्युलोक में।
6. ये जगत् ब्रह्मस्वरूप की अपेक्षा अल्प होने से।
7. विश्वानि।
8. उत्पूर्वकात् इधातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में।

टिप्पणियाँ

9. साशन अर्थात् भोजनादिव्यवहार से युक्त चेतनप्राणजात तथा अनशन अर्थात्उससे रहित अचेतन गिरि, नद्यादि।

10. शरीर।

18.2

1. वसन्त।
2. ग्रीष्म।
3. शरत्।
4. साध्यसृष्टि और साधनयोग्य प्रजापति आदि तदनुकुलऋषि जो मन्त्रद्रष्टा है।
5. सर्वहुत यज्ञ से।
6. दोनों (ऊपर - नीचे) दांत है जिनके।
7. पृष्-धातु से शतृप्रत्यय होने पर और पृषत् च तद् आज्यं च पृषदाज्यम्।
8. प्रपूर्वक उक्ष्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में।
9. वायुशब्द से यत्प्रत्यय, द्वितीयाबहुवचन का रूप।
10. जन्-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में।

18.3

1. ब्राह्मण।
2. क्षत्रिय।
3. वैश्य।
4. शूद्र।
5. मन से।
6. सूर्य।
7. इन्द्र और अग्नि।
8. अन्तरिक्ष।
9. द्यौ।
10. भूमि।

18.4

1. अद्भ्यः सम्भृतः ... ये पुरुषसूक्त में कहे गये छः मन्त्रशुक्लयजुर्वेदीय है। वो पुरुषसुक्त का ही अंश है जो उत्तरनारायणीयसूक्त है। शुक्लयजुर्वेद। ३१ अध्याय।
2. पूर्वकल्प में पुरुषमेध के यजनकर्ता ने आदित्यरूप प्राप्त किया।
3. देवत्वमाजानमग्रे यहाँ व्याख्याकार ने द्विविध देव कहे है। कर्मदेव और आजान देव। कर्म से उत्कृष्टता से देवत्व को प्राप्त किया है वे कर्मदेव। सृष्टी के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए जो देव वे आजानदेव है। जो की कर्म देवों से श्रेष्ठ है।
4. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् ... यहाँ पुरुष का महत्त्व ही सर्वोत्कृष्टतायुक्त और देशकाल आदि के भेद से रहित है।

5. आदित्यवर्ण तमसः परस्तात् ... यहाँ तमपदार्थ अविद्या है।

6. जो तम से परे है, उस महान् देशकाल आदि भेद से रहित आदित्यवर्ण पुरुष को जानकर मृत्यु को भी पार किया जा सकता है।

7. नान्यः पन्थाः अयनाय विद्यते। मृत्यु के अतिक्रमण अर्थात् मृत्युराहित्य के अलावा कोई मार्ग नहीं है - जो तम से परे है उस महान् देशकाल आदि भेद से रहित आदित्यवर्ण पुरुष को जानकर ही मरण का अतिक्रम हो सकता है अन्य कोई उपाय नहीं है।

18.5

1. प्रजापतिश्चरति गर्भे ... ये मन्त्रांश पुरुषसूक्त का है। परन्तु वस्तुतः शुक्लयजुर्वेद में विद्यमान नारायणीयसूक्त का है। यहाँ प्रजापतिसर्वात्मा आदित्य पुरुष है,जो माया से प्रपञ्चरूप से उत्पन्न हुआ है।

2. पुरुषसूक्त में कहे गये पुरुष का योनि अर्थात् कारणस्थान के स्वरूप को धीर अर्थात् ब्रह्मवेत्ता देखते है या जानते है, अहं ब्रह्मास्मि इस रूप ने जानते है।

3. तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।। यहाँ कारणात्मब्रह्म पुरुष पर स्थित होने का प्रसंग है।

4. पूर्वो यो देवेभ्यो जातः। यहाँ जो देवों के लिए यज्ञ कर रहा है या जो देवोंका पुरोहित है, उस प्रजापति की उत्पत्ति का वर्णन है।

5. नमो रुचाय ब्राह्मये। यहाँ रोचते असौ इति रुचः, रुचशब्द का अर्थ दीप्यमान या शोभायमान है। ब्राह्मये में मूलशब्दब्राह्मिः है। ब्रह्म का पुत्र ब्राह्मिः।

6. देवों ने ब्रह्म के पुत्र आदित्य का उल्लेख करते हुए कहा है कि -यो ब्राह्मणः आदित्यम् उक्तविधिना उत्पन्नम् जानीयात् तस्य देवा वशे स्युः।तात्पर्य यह है कि आदित्य के उपासक जगत्पूज्य होते है।

7. देवों ने ब्रह्म के पुत्र आदित्य का उल्लेख करते हुए कहा है कि -यो ब्राह्मणः आदित्यम् उक्तविधिना उत्पन्नम् जानीयात् तस्य देवा वशे स्युः।तात्पर्य यह है कि आदित्य के उपासक जगत्पूज्य होते है।

8. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ यहाँ आदित्य पुरुष जिससे सभी लोग जिसके आश्रयी होते है वह श्री अर्थात् लक्ष्मी है। श्रीयते अनया श्रीः संपद् इत्यर्थः। आदित्यपुरुष और प्रजापति की पत्नियाँ है।

॥ अठारहवां पाठ समाप्त ॥